इकाई 29 धार्मिक विचार और आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भक्ति आंदोलन की विचारधारा से परिचित हो सकेंगे;
- भक्ति आंदोलन पर विभिन्न मतों पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- समाज साहित्य आदि पर भक्ति आंदोलन के प्रभाव को रेखांकित कर सकेंगे;
- इस्लामिक रहस्यवाद, सूफी दर्शन और प्रमुख सूफी सिलसिलों का उल्लेख कर सकेंगे;
- **महदवी** आंदोलन के चरित्र और दर्शन पर प्रकाश डाल सकेंगे; और
- 18वीं शताब्दी के पुनर्रुत्थानवादी आंदोलनों की प्रकृति को समझा सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

जब इस्लाम भारतीय उप-महाद्वीप में आया तो उस समय बौध धर्म अपना वर्चस्व खो चुका था। ब्राह्मणवाद धर्म बौध धर्म के सिद्धातों और आर्यो के पूर्व की प्रथाओं को समेटकर अपनी स्थिति मज़बूत करने की कोशिश कर रहा था। हालांकि इस्लाम यहां के लिए बिल्कुल नयी चीज़ था पर इसने अपने सार्वभौम, बंधुत्व और मानव समानता के सिद्धांतों की सहायता से भारतीयों को प्रभावित किया। ताराचंद के शब्दों में केवल हिंदू धर्म, हिंदू कला, हिंदू साहित्य और हिंदू विज्ञान में ही मुस्लिम तत्व समाहित नहीं हुए बलिक हिंदू संस्कृति और हिंदू विचारधारा में भी परिवर्तन हुआ और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन के प्रति मुसलमान भी जागरूक हुए इस प्रकार आदान-प्रदान की प्रक्रिया शुरू हुई। अलबरूनी, अमीर खुसरो, अबुल फ़जल, दारा शिकोह आदि मुसलमानों ने हिंदू धर्म को समझने की कोशिश की और हिंदू धर्म के संदर्भ में उन्होंने मुसलमानों की समझ को विकसित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। उन्होंने संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया। फिरोज शाह तुगलक, काश्मीर के जैनुल अबीदीन, सिकंदर लोदी, अकबर, जहांगीर आदि ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि मिर्जा मजहर जान जाना ने 18वीं शताब्दी में राम और कृष्ण को पैगम्बर के रूप में घोषित कर दिया।

धर्म, खासकर भक्ति और सूफी, के क्षेत्रों में दो महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों की झलक इस काल में मिलती है। आगे आने वाले भागों में हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

29.2 भक्ति आंदोलन

भारत में मुसलमानों के आगमन के समय शंकराचार्य के सर्वेश्वरवादी दर्शन के बावजूद हिंदू समाज में ईश्वरवाद, वैष्णववाद और शाक्त संप्रदाय के अनुयायी शामिल थे। पर कुछ ऐसे भी बुद्धिजीवी थे जिन्हें (कर्म मार्ग) कर्म के पथ पर विश्वास नहीं था बल्कि वे मुक्ति के लिए (ज्ञान मार्ग) ज्ञान के मार्ग को अधिक उपयुक्त मानते थे। इन विचारों के प्रतिपादकों की आपसी मत भिन्नता ने मनुष्य के वास्तविक नैतिक व्यवहार मनुष्य के जीवन के बेहतर होते स्तर और पृथ्वी पर उसके इच्छित भाग्य की पूर्ति को पूरी तरह नज़रअंदाज कर दिया। अपनी समस्त दार्शनिक और अनुष्ठानिक प्रकृति के साथ ब्राह्मणवाद एक बौद्धिक सिद्धांत बन कर रह गया। इसने लोगों की व्यक्तिगत धार्मिक आकांक्षा को नजरअंदाज किया। इसका मूलभूत सिद्धांत अवैयक्तिक और चिंतन पर आधारित था। लोग एक ऐसे नैतिक और भावनात्मक पंथ की खोज में थे जो उनके हृदय को तृप्त कर सके और उन्हें नैतिक दिशा दिखा सके। पर ऐसा दार्शनिक ब्राह्मणवाद लोगों की समझ के बाहर था। इन परिस्थितियों में भक्ति का उदय हुआ जिसमें भक्ति के साथ-साथ भगवान के साथ प्रेम करने की बात भी कही गयी थी।

29.2.1 विचारधारा

इस विचारधारा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें आत्मा को ईश्वर के साथ बिल्कुल आत्मसात कर दिया गया है। भक्ति शब्द का उल्लेख 8वीं शताब्दी ईसा पूर्व में पाली साहित्य में मिलता है। भागवत गीता, बौध-पूर्व काल के ग्रंथों और छानदोग्य उपनिषद् में एक व्यक्तिगत भगवान के प्रति भक्ति के उदय का संकेत मिलता है। रूढ़ बौद्धिकतावाद की प्रक्रिया के रूप में भक्ति का जन्म हुआ। अत: वेबर के इस कथन को स्वीकार करना कठिन है कि भक्ति एक विदेशी विचारधारा है और यह इसाई धर्म के माध्यम से भारत पहुंचा। बार्थ और सेनार्ट जैसे विद्वानों का भी मानना है कि भक्ति का जन्म भारत में हुआ था और यह भारतीय विचारधारा का ही प्रतिफलन है। पर इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि अपने विकास की प्रक्रिया में इसने बाहरी प्रभाव ग्रहण ही नहीं किया खासकर भारत में इस्लाम के आगमन के बाद। हालांकि हिंदूओं का प्रारंभिक दृष्टिकोण हमेशा से पुरानी मान्यताओं पर आधारित था पर इसमें काफी सुधार आया है।

भागवत् गीता के काल से लेकर 13वीं शताब्दी तक भक्ति का विकास होता रहा और क्रम में परम्परागत क्लासीकल दर्शन और व्यक्तिगत ईश्वर के बीच समझौते की प्रक्रिया चलती रही। भागवत् गीता के लेखों का उद्देश्य एक निश्चित दर्शन प्रतिपादित करना नहीं था बल्कि हिंदू दर्शन के विभिन्न मतों के बीच सामंजस्य स्थापित करना था। भागवत् गीता के अंतर्गत भक्ति में एक ईश्वर और सर्वेश्वरवाद को मिला दिया गया है।

इस प्रकार 13वीं शताब्दी में जब इस्लाम भारत के अंदरूनी इलाकों में प्रवेश करने लगा तब भक्ति काफी हद तक वैदिक बौद्धिकतावाद के घेरे में पड़ी हुई थी। यह भी उल्लेखनीय है कि भागवत् गीता में जाति विभेद को स्वीकार किया गया है।

29.2.2 प्रमुख मत

भक्ति की अवधारणा को कई स्तरों और कई दृष्टिकोणों से परिभाषित और विश्लेषित किया गया। अत: एक दक्षिण भारतीय शैव ब्राह्मण शंकरा ने अद्वैत (एकेश्वरवाद) का सिद्धांत प्रतिपादित किया और उपनिषद् में दिए गए ज्ञान के द्वारा मुक्ति के सिद्धांत का प्रचार प्रसार किया। रामानुज एक दूसरे भारतीय ब्राह्मण थे जिन्होंने अद्वैतवादी होते हुये भी यह स्वीकार नहीं किया कि ईश्वर रूप और गुणों से परे हो सकता है। भक्ति के माध्यम से ही मुक्ति हो सकती है और भक्ति योग सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहस्यवादी प्रशिक्षण है। भक्त और ईश्वर का आपसी संबंध पूर्ण संबंध का एक कण था। प्राप्ति मुक्ति का दूसरा साधन था। रामानुज के भगवान में व्यक्ति तत्व की प्रधानता थी उनका मानना था कि जिस प्रकार मनुष्य को ईश्वर की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ईश्वर को भी मनुष्य की आवश्यकता होती है। ईश्वर अपने में से ही व्यक्तिगत आत्मा का निर्माण करता है। पुन: यह आत्मा परमेश्वर में हमेशा के लिए लीन हो जाती है। उसका अलग अस्तित्व भी होता है। रामानुज के इस मत को विशिष्ट अद्वैतवाद कहा जाता है।

भागवत् पुराण के संस्कृत संस्करण के भारतीय भाषाओं में अनुवादित होने से हिंदू धर्म में भक्ति की अवधारणा तेजी से फैली।

रामानुज के शिष्य (1360-1470) ने नये पंथ की स्थापना की। मध्यकालीन भारत के धार्मिक इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। उन्होंने तुगलकों के अधीन, उत्तर भारत में इस्लाम के विकास की बेहतर जानकारी दी। उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया, विचार एकत्र किये और उनका सावधानी पूर्वक निरीक्षण किया। उन्होंने हिंदू अनुष्ठानों की रूढ़िवादिता का विरोध किया और उनके अनुयायी अद्‌वधुता (असंबद्ध) के नाम से प्रसिद्ध हुये और उन्होंने अपने को सभी प्रकार के धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों से मुक्त कर लिया। पर वे अतीत से बहुत दूर तक जाने को तैयार नहीं थे। इसी कारण अपने आनंद भाष्य में उन्होंने शुद्रों द्वारा वेद पढ़ने के अधिकार को मान्यता प्रदान नहीं की। इस प्रकार रामानंद से सामाजिक समानता की आशा नहीं की जा सकती थी। इसके बावजूद रेदास और कबीर जैसे व्यक्ति उनके शिष्य हुए। रामानन्द की शिक्षा से हिंदुओं में दो विचारधाराओं का उदय हुआ। इन्हें सगुण और निर्गुण के रूप में जाना जाता है। सगुण धर्म से तुलसीदास का नाम जुड़ा हुआ है जिन्होंने धार्मिक भक्ति को साहित्यिक रूप प्रदान किया। राम को एक अवतार मानते हुये और व्यक्तिगत रूप से उसकी आराधना करते हुए इस मत के अनुयायियों ने राम को लोकप्रियता दिलाई और इसके साथ-साथ वेदों की मान्यता भी बनाए रखी।

कबीर दूसरे मत का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। वर्णाश्रम व्यवस्था को समाप्त करने की बात की और वेदों और अन्य पवित्र ग्रंथों की सर्वोच्चता पर प्रश्न चिह्न लगाया। कबीर मत के अनुयायियों ने इस्लाम धर्म को समझने की कोशिश की और उन्होंने उसके आधारभूत सिद्धांतों को अपनाने का उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया। इसी कारण सूफी साहित्य में भी उनका उल्लेख मिलता है। 17वीं शताब्दी में मिरात उल असर में उन्हें फिरदोसिया सूफी कहा गया है। दाबिस्तान-ए-मजाहिब ने कबीर को वैष्णववादी वैरागियों की पृष्ठ भूमि में देखा है। अबुल फज़ल ने कबीर को मुवाहिद (एकेश्वरवादी) कहा है। कबीर के दर्शन पर आधारित प्रमुख ग्रंथ बीजक के तौर पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कभी भी धर्म की स्थापना की बात नहीं सोची थी। यह प्रवृत्ति उनके देहांत के बाद पनपी। वे मुख्य रूप से भक्ति द्वारा प्रतिपादित समन्वय की अवधारणा को स्वीकार करते थे और जिन लोगों ने उनसे जुड़ने की कोशिश की उन्होंने उनका स्वागत किया। सर्वोच्च ईश्वर में विश्वास उनकी अवधारणा का मूल आधार था। उनका यह मानना था कि ज्ञान या कर्म से नहीं बल्कि भक्ति से ही मुक्ति संभव है। उन्होंने न तो हिंदुओं का पक्ष लिया और न मुसलमानों का बल्कि उनमें निहित अच्छे तत्वों की प्रशंसा की।

सिख धर्म

भारतीय दर्शन और विचारधारा में गुरू नानक के उपदेश और दर्शन का विशेष महत्व है। उनके दर्शन में 3 तत्व प्रमुख हैं (गुरू, शबद और संगत)। गुरू नानक ने प्रचलित धार्मिक विचारों का मूल्यांकन और आलोचना की और एक सच्चे धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया जो उन्हें मुक्ति की ओर ले जा सकता था। उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया, तीर्थ स्थानों की यात्रा का समर्थन नहीं किया और न ही अवतारवाद के सिद्धांत को माना। उन्होंने रूपवाद और अनुष्ठानवाद का भी विरोध किया। उन्हें ईश्वर की एकता पर विश्वास था और उनका मानना था मुक्ति के लिए एक सच्चे गुरू का होना आवश्यक है। उन्होंने लोगों को आचार और पूजा के सिद्धांतों का पालन करने को कहा : सच, हलाल, खैर, नियत और ईश्वर की सेवा। नानक ने जाति प्रथा की भी भर्तसना की और इससे पैदा होने वाली असमानता का भी विरोध किया। उनके अनुसार किसी व्यक्ति के व्यवहार और कार्यों के आधार पर जाति और सम्मान निर्धारित होना चाहिए। वे मनुष्य के सार्वभौम बंधुत्व, पुरुष और नारी की समानता में विश्वास रखते थे। उन्होंने नारी मुक्ति की दिशा में भी काफी प्रयत्न किये और सती-प्रथा का विरोध किया। नानक ने ब्रह्मचर्य और शाकाहारिता का समर्थन नहीं किया। उन्होंने न्याय, न्यायोचित और स्वतंत्रता जैसी अवधारणाओं पर बल दिया। नानक के पदों में मुख्य रूप से दो अवधारणाएँ शामिल हैं : सच और नाम। शबद (शब्द), गुरू और हुक्म (ईश्वर का आदेश) ईश्वर आत्माभिव्यक्ति के आधार बनते हैं। उन्होंने कीर्तन और सतसंग पर भी बल दिया। उन्होंने सांप्रदायिक भोज (लंगर) की शुरुआत की। ताराचंद के अनुसार नानक पर सूफियों का प्रभाव था। नानक और बाबा फरीद के पदों में विचारों की समानता देखी जाती है। इन दोनों में निष्ठापूर्ण समर्पण और एकेश्वर के प्रति समर्पण का भाव मिलता है। पर इसी के साथ-साथ गुरू नानक ने ऐश्वर्यपूर्ण जिंदगी व्यतीत करने के लिए सूफियों की आलोचना भी की। गुरू

नानक ने हिंदूओं और मुसलमानों को एक करने की कोशिश की और निश्चित रूप से उन्होंने अपने उपदेशों में हिंदू धर्म और इस्लाम की आधारभूत अवधारणाओं को शामिल करने की कोशिश की। सिखों के धार्मिक ग्रंथ गुरू ग्रंथ साहब का संकलन गुरू अर्जुन ने किया था। 10वें गुरू गोविंद सिंह की मृत्यु के बाद ईश्वरीय तत्व दूसरे गुरू को हस्तांतरित नहीं हुआ और यह ग्रंथ और संप्रदाय के लोगों में समाविष्ट हो गया।

ये गुरू मुख्य रूप से खत्री , व्यापारिक जाति के थे और उनके अनुयायी मुख्य रूप से ग्रामीण जाट थे। गुरू गोविंद सिंह ने सिखों के बीच खालसा (बंधुत्व) का प्रतिपादन किया। सिख सम्प्रदाय के अंतर्गत खत्री और अरोड़ा के साथ-साथ जाट भी शामिल हैं। राम गढ़िया सिख के रूप में जाने जाने वाले शिल्पकार और अनुसूचित जाति से सिख धर्म में परिवर्तित लोग हुये। सिख पंथ में जातिगत चेतना अस्तित्व में थी पर इसका महत्व अधिक नहीं था।

दादू (लगभग 1544-1603) भी कबीर के सिद्धातों से प्रभावित थे। दोहों और कविताओं के अपने संग्रह बाणी में उन्होंने अल्लाह, राम और गोविंद को अपना गुरू माना है। दादू के ब्रह्माण्ड ज्ञान और आत्मा शुद्धि जैसे विचारों पर सूफी प्रभाव दिखाई पड़ता है। 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद दादू पंथ नागाओं या पेशेवर लड़ाकुओं में तबदील हो गया।

बोध प्रश्न 1

1) भक्ति आंदोलन के दो प्रमुख मतों का उल्लेख कीजिए।

....
....
....
....
....

2) भक्ति आंदोलन की विचारधारा पर संक्षिप्त में विचार कीजिए।

....
....
....
....
....

3) सिख धर्म के प्रमुख विचारों का उल्लेख कीजिए।

....
....
....
....
....

मराठा वैष्णव धर्म

वैष्णव धर्म के मराठा पंथ या भागवत् धर्म का लम्बा इतिहास है। 13वीं शताब्दी के अंत तक महाराष्ट्र के कवि संतों ने भक्ति आंदोलन के दर्शन से इसे समृद्धि और तीव्रता दी। इनमें सर्वप्रमुख ज्ञानेश्वर हैं वे एक ब्राह्मण थे और उन्हें मराठा वैष्णव धर्म का महान प्रतिपादक बताया जाता है। उन्होंने भागवत् गीता पर भावार्थ दीपिका या ज्ञानेश्वरी नाम से मराठी टीका लिखी थी। इस आंदोलन का मुख्य केंद्र पंढरपुर था। बाद में पंढरपुर स्थित विठोबा का पूजा-स्थल महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन का प्रमुख आधार बन गया। पंढरपुर का कृष्ण भक्ति आंदोलन, मंदिर और मूर्ति से गहरे रूप में जुड़ा हुआ था। पर इसकी प्रकृति मुख्य रूप से मूर्ति पूजा पर ही आधारित नहीं थी, विठोबा का महत्व एक साधारण देवता से कहीं ज्यादा था, इसका महत्व प्रतीतात्मक था।

इस वैष्णव धर्म की मुख्य विशेषता इसका अनुष्ठान विरोधी और जाति विरोधी होना था। महाराष्ट्र के इस वैष्णववादी, अनुष्ठान विरोधी और जाति विरोधी आंदोलन की तुलना उत्तर भारत के अन्य रूढ़िवादी आंदोलन से की जा सकती है।

कवि संतों ने समाज के निचले हिस्से तक धर्म को पहुँचाने की कोशिश की। इन्होनें भागवत् गीता को मराठी धुनों में संगीतबद्ध किया। ज्ञानेश्वर ने महाराष्ट्र में भागवत् धर्म की आधारशिला रखी और विठोबा की मूर्ति की स्थापना करने वाले और उन्हें पूजने वाले बरकरी पंथ को बढ़ावा दिया। विठोबा बरकरी पंथ के भगवान थे। इसके अनुयायी गृहस्थ होते थे जो साल में दो बार विठोबा के दर्शन हेतु जाया करते थे। इसकी सदस्यता में जाति के आधार पर कोई बंधन नहीं था। अतिशुद्र कुम्हार, माली, माहार (जाति बहिष्कृत) और अलुते-बलुतेदारों को भी इसमें शामिल किया गया। संत चोका, गोरा कुम्हार, नरहसि सुनार, बंका माहार आदि हरिजन संत थे।

ज्ञानेश्वर के काल में नामदेव (दर्जी), तुकाराम, रामदास और एकनाथ (ब्राह्मण) प्रमुख मराठी संत थे। उन्होंने ज्ञानेश्वर की परम्परा को आगे बढ़ाया। तुकाराम और रामदास (शिवाजी के गुरू) ने भी जाति विरोधी और अनुष्ठान विरोधी मान्यताओं का प्रचार किया। एकनाथ ने लोक भाषा मराठी में अपनी रचनायें प्रस्तुत कीं। उन्होंने माराठी साहित्य में अध्यात्मवाद की जगह वर्णात्मक रचनाओं पर विशेष बल दिया। उन्होंने अवंग ओर छंद (दोहा) के रूप में अपने उपदेश प्रस्तुत किये जिसे गाथा के नाम से जाना जाता है। यह मराठा वैष्णव वाद के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है। धार्मिक निर्देश के लिए वरकरी मराठा संतों ने कीर्तन और निरूपण जैसी नयी विधियों का विकास किया। इस मराठा आंदोलन ने मराठी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन संतों ने लोक भाषा का उपयोग किया जिसके कारण मराठी को साहित्यक भाषा की गरिमा प्राप्त हुई। वरकरी सम्प्रदाय के साहित्य से हमें इस आंदोलन की अकुलीन या जन प्रवृत्ति का पता चलता है। इस आंदोलन ने कुनबियों (किसानों), बनियों (व्यापारियों), शिल्पियों आदि को संबोधित किया। एम. जी. रानाडे बताते हैं इस आंदोलन के दौरान लोक साहित्य का तेजी से विकास हुआ और इसने निम्न जाति के उत्थान में सहायता की।

गौड़िया वैष्णववाद

गौड़िया वैष्णववाद आंदोलन और चैतन्य आंदोलन (तब वैष्णव आंदोलन) ने चैतन्य के जीवन और शिक्षा से प्रभाव ग्रहण किया और इसका प्रभाव आसाम, बंगाल और उड़ीसा के लोगों के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा। लोग केवल उनके उपदेशों से ही प्रभावित नहीं हुये बल्कि उन्हें ईश्वर के अवतार के रूप में पहचानने लगे। पहले हम चैतन्य के काल से पूर्व के बंगाल और उड़ीसा की सामाजिक और धार्मिक स्थितियों का सर्वेक्षण कर लें । सामाजिक ढाँचा वर्णाश्रम पर आधारित था। शुद्रों और निम्न जातियों पर तरह-तरह के जुल्म ढाये जाते थे। शाक्त-तांत्रिक जैसे धार्मिक पंथों का वर्चस्व कायम हो रहा था। बंगाल की मध्यकालीन भक्ति वैष्णव और गैर वैष्णव बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म से प्रभावित थी। जयदेव का **गीत गोविंद** पालवंश के शासन काल में लिखा गया जिसमें राधा और कृष्ण के प्रेम को शृंगारिक रहस्य वाद का आवरण प्रदान किया गया है। बौद्ध धर्म भी पतन की ओर उन्मुख था और इस पतनोन्मुख बोद्ध धर्म ने वैष्णववाद को प्रभावित किया जिसने बंगाली भक्ति आंदोलन को प्रभावित किया। इसमें मुख्य रूप से शृंगार, नारी वर्णन और भोगवाद पर बल दिया गया है। चैतन्य के पूर्व बंगाल और उड़ीसा में ब्राह्मणों द्वारा निम्न वर्ग की जातियों पर जुल्म ढाए जाते थे। एक भक्त कवि चंडीदास, **गीत गोविंद** और सहजिया सिद्धांतों (बौद्ध धर्म) दोनों से ही प्रभावित थे। सामाजिक और धार्मिक पतन के दौर में चैतन्य आन्दोलन ने आगे बढ़कर महत्वपूर्ण बदलाव किये। इस आंदोलन के प्रतिपादक चैतन्य ने अपने आपको सभी प्रकार की सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त रखा। मूलभूत रूप में यह सामाजिक सुधार आंदोलन नहीं था हालांकि इसने जातिगत बाधाओं को नकार दिया था। ब्राह्मण होने के बावजूद चैतन्य ब्राह्मणों की सर्वोच्चता में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने खुले रूप में जाति संबंधी नियमों का उल्लंघन किया और निम्न वर्गीय जातियों के साथ मेल-मिलाप रखा। **चैतन्य भागवत्** के लेखक वृंदावन दास ने बताया है कि किस प्रकार उन्होंने निम्न जातियों के साथ मेल-जोल रखा। उन्होंने ब्राह्मणवाद के प्रतीकों को नकार दिया। नव वैष्णववाद आंदोलन समाज के अछूत माने जाने वाले वर्गों को साथ लेकर चला।

भक्ति सिद्धांत के प्रभाव में मीरा एक महत्वपूर्ण कवियत्री के रूप में उभरी और उन्होंने कृष्ण भगवान को अपना प्रेमी और आराध्य बनाया। अपनी कविता **पदावली** में उन्होंने अपने को शुद्ध आत्मा कहा है और

कृष्ण के प्रति अपने को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है और सांसारिक जीवन की ओर से मुँह मोड़ लिया। मीरा ने मूर्ति पूजा और विशेष व्रत जैसे पक्षों पर बल दिया है।

29.2.3 भक्ति आंदोलन का प्रभाव

भक्ति के सिद्धांत ने समकालीन समाज को कई रूपों में ऊपर उठाया। भोजपुरी, मगधी और मैथिली (बिहार), अवध क्षेत्र की अवधी, मथुरा क्षेत्र की ब्रजभाषा और राजस्थानी, पंजाबी, कश्मीरी, सिंधी और गुजराती जैसी बहुरूपीय बोलियों को नया स्वरूप प्रदान किया। भक्ति काल के प्रमुख कवियों के लेखन से तमिल और मराठी साहित्य में अभूतपूर्व विकास हुआ। कृष्ण भक्ति से संबंधित चैतन्य सम्प्रदाय के गीत, संगीत कथाओं और नाटकों से बंगाली साहित्य समृद्ध हुआ (देखिए इकाई 31)।

साहित्य के अलावा भक्ति सिद्धांत एवं संतों के प्रयास से सामाजिक धार्मिक अवधारणाओं में भी परिवर्तन हुआ जिसके कारण मध्य काल में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका निर्मित हुई। यह सही है कि भक्ति आंदोलन मूलत: देशी है पर इस देश के मुसलमानों का भी इस पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह केवल दोनों धर्मों का मिलन स्थल ही नहीं है बल्कि इसने खुले रूप में मनुष्य की समानता का प्रतिपादन किया था और कर्मकांड और जातिभेद का जमकर विरोध किया है। यह मूलत: नयी विचारधारा थी जो पुरानी परम्पराओं से अलग थी और इसके धार्मिक विचार भी नये प्रकार के थे। यह पूरी जीवन पद्धति को नये ढंग से सवांरना चाहती थी। इसने नये और समानता के आधार पर समाज का निर्माण करने का उद्देश्य अपने सामने रखा और एक नैतिक आध्यात्मिक ढाँचे के निर्माण की कोशिश की।

बोध प्रश्न 2

1) समकालीन समाज और साहित्य पर भक्ति आंदोलन का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

....

2) मराठा वैष्णववाद की मुख्य विशेषतायें क्या हैं?

....

....

....

....

....

3) गौड़िया वैष्णव आंदोलन की पृष्ठभूमि पर विचार कीजिए। इसकी मुख्य विशेषतायें क्या थीं?

....

....

....

....

....

29.3 रहस्यवाद

रहस्यवाद धर्म का ही एक प्रतिफलन है। ईश्वरीय गुणों एवं आज्ञा और जगत पर उसके प्रभाव के संदर्भ में समय-समय पर कई विचार उत्पन्न हुए और इन्हीं विवादों के बीच से सभी इस्लामी आंदोलनों का जन्म हुआ। इस्लाम के धार्मिक और आध्यात्मिक आंदोलन से राजनैतिक आयाम भी जुड़ा हुआ है। अत:

धार्मिक आंदोलन के कई प्रतिपादकों ने अपनी विचारधारा को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से राज्य का समर्थन प्राप्त करना चाहा। काफी समय से **इल्लमुलकलाम** (कट्टरपंथ को तर्कसंगत ढंग से समर्थन देने की विचारधारा) और यूनानी दर्शन से प्रभावित और ईश्वर के साक्षातीकरण पर बल देने वाले विचारकों के बीच द्वंद्व चल रहा था। सब प्रकार के प्रयासों के बावजूद कट्टर धर्मशास्त्री न तो दर्शन के अध्ययन को रोक सके और न ही शासकों को दार्शनिकों को संरक्षण देने से रोक सके। सूफी सिद्धांत ने इस्लामी दर्शन का तीसरा दृष्टिकोण सामने रखा।

29.3.1 सूफी दर्शन

दार्शनिक उस मूल तत्व के स्वरूप को तर्क का आधार देने का प्रयत्न कर रहे थे और कलाम के विद्वान ईश्वर को अनुभव से परे मान रहे थे अर्थात् ईश्वर का न तो साक्षात्कार किया जा सकता है न उसे आत्मसात किया जा सकता है। इन सबसे अलग सूफी वाद अंतर्ज्ञानी और आध्यात्मिक प्रयासों के द्वारा उस ईश्वर के साथ आत्मसात होने की आंतरिक अनुभूति की बात करता है। तर्क को नकारते हुए सूफियों ने मनन और ध्यान करने पर बल दिया।

भारत के अठारवीं शताब्दी के एक प्रमुख विद्वान शाह वलिउल्लाह के विश्लेषण के अनुसार सूफी धर्म इस्लाम के गोपनीय पक्ष को न्यायोचित ठहराता है जिसमें नैतिक आचरण के द्वारा हृदय को पवित्र करने की बात कही गई है। इस्लामी सिद्धांत में इस आयाम को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि अल्लाह की इबादत करते हुए ध्यान रखना चाहिए कि भक्त अल्लाह को देख रहा है और वह भक्त को देख रहा है।

सूफी पंथ चार चरणों में विभक्त है। प्रथम चरण की शुरुआत पैगम्बर मोहम्मद और उनके सहयोगियों द्वारा होती है और यह बगदाद के सूफी शेख जुनैद के समय (मृत्यु 910) तक जारी रहता है। इस काल में सूफियों ने अपने को प्रार्थना (**नमाज**), उपवास (**रोजा**) और ईश्वर का नाम लेने (**जिक्र**) तक सीमित रखा। जुनैद के काल में सूफी अपने को ध्यान और मनन में लीन रखते थे। इस दौरान आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होता था जिसे प्रतीकात्मक रूप में या असामान्य मुहावरों द्वारा व्यक्त किया जाता था। इस चरण में सूफियों ने **समा** (धार्मिक संगीत) के भावनात्मक प्रभाव पर विशेष बल दिया। भौतिक इच्छाओं से अपने को बचाने के लिए सूफियों ने आत्मग्लानि की प्रथा की शुरुआत की। संसार की माया और भौतिक सुख सुविधाओं से अपने को दूर रखकर सूफी दूरदराज के जंगलों और पहाड़ों पर जीवन व्यतीत करने लगे।

शेख अबु सैयद बिन अबुल खैर (मृत्यु 1049) के साथ तीसरे चरण की शुरुआत हुई। अब हर्षातिरेक दूरसंवेदन पर जोर दिया जाने लगा और इसके माध्यम से आध्यात्मिक संवाद कायम किया गया। भौतिक और शाश्वत को एकाकार किया गया और इसमें उनका व्यक्तित्व समाहित हो गया तथा सूफियों ने नियमित प्रार्थना, उपवास आदि भी छोड़ दिया।

चौथे चरण में सूफियों ने मूल तत्व (**वाजिब उल वजूद**) से पाँच अवस्थाओं में अवरोहण सिद्धांत ग्रहण किया। यहीं से **वहादत-उल वजूद** की समस्या शुरू हुई।

बायजिद बुस्तानी (मृत्यु 874 या 877-78) ने सूफी धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका अदा की। वह ईरानी था। उसने **फना** (अस्तित्व मिटाना) की अवधारण से परिचित कराया। इसके अनुसार मनुष्य अपने अस्तित्व को ईश्वर में डूबो देता है, यह एक ऐसी स्थिति है जहां रहस्यवादी को शाश्वत जीवन (**बका**) की अनुभूति होती है।

बायजीद के चिंतन को जुनैद के एक शिष्य हुसैन इब्न मन्सूर अल हल्लाल ने आगे बढ़या। उसके रहस्यावादी सिंद्धात **अन अल हक** (मैं सत्य या ईश्वर हूँ) ने फारस और भारत में रहस्यावादी विचारों के अभ्युदय में महत्वपूर्ण भमिका निभाई। कई सिलसिलों की स्थापना हुई और दूर दराज इलाकों में शिष्यों को नियुक्त करने की प्रथा चली। तीसरे चरण में इस प्रवृत्ति में तेजी आई और कई प्रमुख सूफी संत भारत आए। भारत आने वाले सूफी संतों में शेख सफीउद्दीन गजिरूनी और अबुंल हसन अली बिन उस्मानी अल-हुजवारी उल्लेखनीय हैं।

29.3.2 सैद्धान्तिक ग्रंथ

हुजवारी का **काशफ-उल-महजूब** और शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी कृत **अवारिफ-उल-मआरिफ** दो प्रमुख सूफी धर्म ग्रंथ हैं। इनमें मोहम्मद साहब के दिनों से लेकर सभी सूफियों की जीवनी और विचारधाराओं का उल्लेख हुआ है। दोनों **शरियत** (इस्लाम के सिद्धांत) की सर्वोच्चता स्वीकार करते हैं। इनमें कहा गया है कि सूफियों को अनिवार्य रूप से शरियत का पालन करना चाहिए। उनके अनुसार **शरियत, मारिफत** (अध्यात्म विद्या) और **हकीकत** (यथार्थ) एक दूसरे के पूरक हैं।

29.3.3 प्रमुख सिलसिले

13वीं शताब्दी तक आते-आते सूफी धर्म चौदह सिलसिलों में विभक्त हो गया। शेख शहाबुद्दीन के कुछ शिष्य भारत आए, पर शेख बहाउद्दीन जकारिया भारत में सुहरवर्दी सम्प्रदाय का असली संस्थापक था। उसने अपने को दरबार से जोड़ लिया और 1228 ई. में इल्तुतमिश ने उसे **शेख-उल-इस्लाम** नियुक्त किया। इसके बाद से सुहरवर्दी सिलसिले शासन व्यवस्था से जुड़े रहे और राजनैतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। शेख रूकनुद्दीन इस सिलसिले का महान संत था जिसे दिल्ली के सुल्तानों ने खूब सम्मान दिया। उसके अनुसार एक सूफी के पास तीन चीजें होनी चाहिए : सम्पत्ति (कलंदर की भौतिक मांगों की पूर्ति के लिए), ज्ञान (उलेमा के साथ प्रश्नों पर विद्वतापूर्वक बहस करने के लिए) और हाल (रहस्यवादी अंतर्ज्ञान, दूसरे सूफियों को प्रभावित करने के लिए)। उसकी मृत्यु (1334-35) के बाद सुहरवर्दी सिलसिला मुल्तान के बाहर अन्य प्रांतों में भी विकसित हुआ और कच्छ से गुजरात, पंजाब, कश्मीर और यहां तक कि दिल्ली तक फैला। फिरोजशाह तुगलक के अधीन इस सिलसिले को सैयद जलालुद्दीन बुखारी ने प्रतिष्ठा दिलवाई। वह एक कट्टर और शुद्धतावादी मुसलमान था और मुस्लिम सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं पर हिंदूओं के बढ़ते प्रभाव का विरोध करता था। कुतुब आलम और शाह आलम इस सिलसिले के प्रमुख संत हैं। इन्होंने अपने समय के राजनीतिक शासकों को प्रभावित किया था।

इसी के साथ-साथ 14वीं शताब्दी में **फिरदौसिया** नामक एक और **सिलसिला** उदित हुआ। शेख शर्फुद्दीन अहमद याहया इस समय के प्रमुख संत थे। वे **हादत उल वजूद** के प्रबल समर्थक थे।

चिश्ती सिलसिला भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसे लोगों के बीच सम्मान भी प्राप्त हुआ और इसने भारत में सूफी धर्म की नींव भी मजबूत की। इसकी स्थापना ख्वाजा चिश्ती (मृत्यु 966) ने की थी और भारत में इसे ख्वाजा उसमान हारूनी के शिष्य ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती लेकर आए। दुर्भाग्यवश हमें उनके जीवन का कोई विश्वस्त दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। जो कुछ भी उनके जीवन के बारे में मालूम है वह उनके प्रति विभिन्न संतों की श्रद्धांजलि के रूप में उपलब्ध है। उनका जन्म 1143 में सिस्तान में हुआ था और वे मोहम्मद गोरी के आक्रमण के ठीक पहले भारत पहुँचे थे। अपने गुरू के परामर्श पर 1190 में वे भारत पहुँचे और अंतत: अजमेर में बस गए। ऐसा माना जाता है कि उनकी मृत्यु 1234 में हुई थी।

ख्वाजा मुईनुद्दीन के कथनों से प्रतीत होता है कि वे ईश्वर के समक्ष अपनी दीनता, लघुता और भक्ति प्रकट करते हैं। उनके अनुसार जो ईश्वर को जानते हैं वे दूसरे लोगों में घुलना मिलना पसंद नहीं करते और ईश्वर से संबंधित ज्ञान पर मौन रहते हैं। उनकी मृत्यु के बाद, उनके शिष्यों की देखरेख में इस **सिलसिले** ने उल्लेखनीय प्रगति की।

चिश्ती संत संगीत के आध्यात्मिक प्रभाव में विश्वास रखते थे। ख्वाजा मुइनुद्दीन के शिष्य ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का संगीत सुनते हुए आनंदातिरेक की अवस्था में देहावसान हुआ था। वे दिल्ली में रहते थे ओर यहां के लोगों पर उनका जबरदस्त प्रभाव था।

खवाजा फरीदउद्दीन मसूद ख्वाजा कुतुबुद्दीन के खलीफा (उत्तराधिकारी) थे। उन्होंने अपने को राजनेताओं और धनी तथा शक्तिशाली व्यक्तियों से अलग रखा। उसने अपने शिष्य सैयदी मौला को सलाह दी थी : "राजाओं और कुलीनों से मित्रता मत करो। उनके घर जाना तुम्हारे लिए घातक होगा (तुम्हारे ज्ञान के लिए)। राजाओं और कुलीनों से मित्रता करने वाले हर दरवेश का अंत बुरा होता है।' ऐसा ही संदेश उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य शेख निजामुद्दीन औलिया को भेजा था और कहा था कि राजाओं से दूर रहो। बाबा फरीद का 1265 में 93 वर्ष की आयु में देहावसान हुआ।

शेख निजामुद्दीन उनके प्रमुख शिष्य थे। हालांकि उनके जीवन काल में दिल्ली में सात सुल्तानों का शासन हुआ पर उन्होंने कभी दरबार के अंदर कदम नहीं रखा। शेख के उदारवादी दृष्टिकोण और संगीत से उनके जुड़ाव के कारण कट्टरपंथी उलेमाओं ने उनकी निंदा की। 1325 में उनकी मृत्यु के बाद भी शेख को बहुत सम्मान मिला और अभी भी उन्हें महान् आध्यात्मिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है। उन्होंने लोगों को ईश्वर से प्रेम करना सिखाया और सांसारिक मामलों से मुक्त होने की सलाह दी। प्रेम मार्ग से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है- यह उनकी शिक्षा का मूल सार था। उन्होंने यह भी बताया कि मानव प्रेम से ईश्वर प्रेम पूर्णतया प्राप्त होता है। उनके अनुसार सामाजिक न्याय और सहिष्णुता इस्लाम के अंग हैं।

शेख निजामुद्दीन का यह प्रेम का संदेश उनके शिष्यों द्वारा देश के कोने-कोने में ले जाया गया। शेख सिराजुद्दीन उस्मानी इस संदेश को बंगाल तक ले गये। शेख अलाउद्दीन अलाउल हक उनके उत्तराधिकारी बने और वह पूर्वी भारत में इस संदेश का प्रचार करते रहे। शेख निजामुद्दीन के एक अन्य शिष्य शेख बुरहानुद्दीन दौलताबाद में बस गए और वहां उनके शिष्य शेख जैनुद्दीन और शाह बरकतुल्ला ने समानता और मानवता का संदेश फैलाया। ये लोग आंतरिक प्रकाश और हृदय के धर्म के प्रचारक और पुजारी थे।

यहां एक बात ध्यान देने की है कि अपने गूढ़ ज्ञान के बावजूद मुस्लिम संत जीवन के यथार्थ से कटे हुए नहीं थे। वे आध्यात्मिक ज्ञान और आनंदातिरेक के लिए जीवन के सामाजिक नैतिक आयाम को छोड़कर आगे बढ़ने में विश्वास नहीं रखते थे। इसीलिए उन्होंने न्याय और परोपकार की मांग की। कुरान में यह बात कही गई है कि प्रार्थना लोगों की सेवा से जुड़ी हुई है, सेवा से कटी प्रार्थना अधूरी और अप्रभावी होती है। जब भी कोई शासक इस पथ से अलग हुआ उन्होंने खुलकर उसकी आलोचना की। इसी कारण से वे राज्य की अनुकंपा लेने के इच्छुक नहीं थे क्योंकि इससे उनके सोच और कार्य की स्वतंत्रता में बाधा पहुंचती। सूफियों ने संगीत समा (समा) को यह कहकर सही ठहराया कि सूफी ईश्वर का प्रेमी है, उसका ईश्वर से अलग संबंध है और वह दूसरों की तरह ईश्वर का "अब्द" या दास नहीं है। संगीत से प्रेम की लौ उठती है और इससे आनंदातिरेक के माहौल में प्रवेश करना आसान हो जाता है, अत: सूफियों को संगीत की अनुमति थी।

बाबा फरीद की मृत्यु के बाद चिश्ती **सिलसिला** दो प्रमुख उपविभागों में विभक्त हो गया—निजामिया और साबरिया। साबरिया की स्थापना मख्दुम अलाउद्दीन अली साबरी ने की जिन्होंने अपने को दुनिया से काट लिया था और सन्यासी का जीवन व्यतीत करने लगे थे।

शेख अब्दुल कुद्दूस गंगोत्री ही (मृत्यु 1537) साबरिया सिलसिले के एक प्रमुख संत थे। वह ईश्वर की एकता" (**वहादत उल वजूद**) सिद्धांत के प्रतिपादक थे। यह अवधारणा भारत की जनता और बुद्धिजीवियों के बीच काफी लोकप्रिय हुई।

आइए अब **कादरी** और **नक्शबंदी** जैसे दूसरे महत्वपूर्ण सिलसिलों के योगदान की चर्चा की जाए।

कादरी सिलसिला के संस्थापक बगदाद के शेख अब्दुल कादिर जिलानी (मृत्यु 1166) थे। पश्चिमी अफ्रीका और मध्य एशिया के बीच इस्लाम के प्रसार में इस **सिलसिले** ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 15वीं शताब्दी के मध्य में शाह निआमतुल्लाह और मखदूम मोहम्मद जिलानी इस **सिलसिले** को लेकर भारत आए। इस परिवार के एक सदस्य शेख मूसा ने अकबर की सेवा स्वीकार कर ली पर उनके भाई शेख अब्दुल कादिर ने सरकारी सेवा स्वीकार नहीं की।

राजकुमार दारा शिकोह कादिरी सिलसिला का प्रमुख अनुयायी था। वह शाहजहाँ के साथ लाहौर स्थित कादिरी सिलसिले के संत मियां मीर (1550-1635) के दर्शन के लिए प्रस्तुत हुआ था। वह उनके व्यक्तित्व से काफी प्रभावित हुआ था। शेख की मृत्यु के बाद दारा मुल्ला शाह बदखशी का शिष्य बना। राजकुमार के रहस्यवादी ग्रंथों, **सफीनत-उल-औलिया**, **सकीनत-उल-औलिया**, **रिसाला ए हक नुमा, मजमा उल बहैरन,** आदि पर **वहादत उल वजूद** अवधरणा का प्रभाव देखा जा सकता है।

अकबर के शासन काल में चिश्ती सिलसिला फिर एक बार प्रमुख हो उठा। सम्राट फतेहपुर स्थित शेख सलीम चिश्ती का परम भक्त था। इस काल के एक प्रमुख कुलीन बैरम खाँ की भी शेख सलीम चिश्ती में असीम आस्था थी।

18वीं शताब्दी के दौरान दिल्ली के शेख कलीमुल्लाह और उनके शिष्य शेख निजामुद्दीन चिश्ती प्रमुख हस्तियों के रूप में उभरे।

भारत में नक्शबंदी **सिलसिले** की शुरुआत ख्वाजा बाकी बिल्लाह (1563-1603) ने की। इस सिलसिले के संस्थापक ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी (1317-1389) थे। बाकी बिल्लाह इस सम्प्रदाय के 7वें उत्तराधिकारी थे। आरंभ से इस सिलसिले के संतों ने इस्लाम के कानून (**शरियत**) पर काफी बल दिया और उन सभी बिददतों (धर्म में नई प्रथाओं का प्रयोग) की जमकर आलोचना की जिससे इस्लाम की शुद्धता पर आंच आती थी। इस प्रकार इसे वहादत उल वजूद के सिद्धांतों के खिलाफ एक प्रकिया के रूप में देखा जा सकता है। ख्वाजा बाकी बिल्लाह के प्रमुख शिष्य शेख अहमद सरहिंदी ने इस सिद्धांत की जमकर आलोचना की। उसने यह मत प्रचारित किया कि जिस भगवान ने विश्व को बनाया है उसकी तुलना मनुष्य के साथ नहीं की जा सकती। वहादत उल वजूद के स्थान पर उसने वहादत उल शहूद की स्थापना की। उसके अनुसार ईश्वर की एकता वस्तुनिष्ठ नहीं बल्कि आत्मनिष्ठ अनुभव है। एक संत को ऐसा लग सकता है कि उसने ईश्वर से साक्षात्कार कर लिया है पर यथार्थ में ऐसा नहीं होता। आनंदातिरेक की स्थिति में वह धर्म में इतना खो जाता है कि वह अपना अस्तित्व खो बैठता है। पर यह एक अस्थाई अनुभव होता है और संत अपने को अबदियत (पराधीनता) की स्थिति में पाता है। शेख के अनुसार मनुष्य और ईश्वर का संबंध दास और मालिक या आराधक और आराध्य का संबंध होता है। यह प्रेमी और प्रेमिका का संबंध नहीं होता जैसा कि सूफी आम तौर पर मानते हैं। वह इस बात पर बल देते हैं कि ईश्वर और अपने सर्जक के प्रति मनुष्य का संबंध निष्ठा और उत्तरदायित्व का होता है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा भाव से ही मनुष्य और ईश्वर के बीच सही संबंध स्थापित होता है। केवल **शरियत** के माध्यम से ही मनुष्य उस असीम सत्ता का अनुभव कर सकता है। शेख अहमद ने सूफी रहस्यवादी सिद्धांत और कट्टरपंथी इस्लाम की शिक्षा को एक साथ मिलाने की कोशिश की इसलिए उन्हें इस्लाम का मुजददिद कहा जाता है। औरंगजेब मुजददिद के पुत्र ख्वाजा मोहम्मद मासूम का शिष्य था।

शाह वलीउल्लाह (1702-1762) एक जाने माने विद्वान और नक्शबंदी सिलसिले के एक प्रमुख संत थे। उन्होंने **वहादत उल वजूद** और **वहादत उल शहूद** के दोनों सिद्धांतों को एक साथ मिलाने की कोशिश की क्योंकि उनका मानना था कि इन दोनों सिद्धांतों में कोई मूलभूत अंतर नहीं है। उनके अनुसार इन दोनों विचारों में ईश्वर का अनुभव करने का तत्व छिपा हुआ है और ईश्वर का अस्तित्व स्वतंत्र है। इस संसार का अस्तित्व सत्य नहीं है और इसे काल्पनिक भी नहीं कहा जा सकता है। उनका यह भी मानना है कि यथार्थ एक ही है। जो अनेक रूपों में परिलक्षित होता है। इसके बावजूद अगर कहीं थोड़ी बहुत भिन्नता है तो यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है।

ख्वाजा मीर दर्द एक प्रमुख उर्दू कवि के साथ-साथ नक्शबंदी सिलसिले के एक प्रमुख संत थे। वह शाह वलीउल्लाह के समकालीन थे। अपने आंतरिक अनुभव के प्रकाश में उन्होंने **वहादत उल वजूद** की भी आलोचना की थी। उनके अनुसार आनंदातिरेक के नशे में सूफियों ने इस सिद्धांत की स्थापना की थी। अत: इस प्रकार का सिद्धांत न्यायोचित नहीं है। उन्होंने वहादत उल वजूद में आस्था रखने वाले लोगों की यह कहकर आलोचना की कि उन्हें यथार्थ का कोई ज्ञान नहीं है। उनका यह भी मानना था कि ईश्वर के समक्ष दास बनकर ही पहुंचा जा सकता है।

भारत के लगभग प्रत्येक हिस्से में सूफियों ने अपने केंद्र (खानकाह) स्थापित कर लिए थे जहां पीर के नेतृत्व में आध्यात्मिक चर्चाएँ हुआ करती थीं।

17वीं शताब्दी के अंत तक संतों और पीरों की परम्परा चलती रही इसके बाद इसका ह्रास शुरू हुआ। पर 18वीं शताब्दी में भी कुछ **खानकाह** आध्यात्मिक संस्कृति के प्रमुख केंद्र बने रहे। ऐसी **खानकाहों** में ख्वाजा मीर दर्द की खानकाह एक प्रमुख केंद्र थी जहां सम्राट शाह आलम अक्सर जाया करते थे।

बोध प्रश्न 3

1) सूफी दर्शन के मुख्य तत्व क्या हैं?

....

....

....

....

....

2) प्रमुख सूफी **सिलसिलों** पर प्रकाश डालिये।

....

....

....

....

....

29.3.4 महदवी आंदोलन

पैगम्बर मोहम्मद या उनके साथियों के काल से ही उद्धारकों की परम्परा चली आ रही है। इस्लाम के इतिहास में हज़रत अली के पुत्र मोहम्मद अल हनीफा पहले उद्धारक (महदी) माने जाते हैं। इसके बाद महदियों का आगमन हुआ जो मुख्य रूप से आर्थिक और राजनीतिक आदोलनों से जुड़े हुये थे। जौनपुर के सैयद एक मात्र महदी थे जिन्होंने राजनीतिक सत्ता से अपने को नहीं जोड़ा और जो मुख्य रूप से आध्यात्मतावाद और इस्लाम के शुद्धीकरण से जुड़े रहे।

उन्होंने मक्का में अपने को उद्धारक घोषित किया। भारत लौटने पर ऐसे उलेमाओं ने उन पर काफी दबाव डाला जो उनके खिलाफ दुश्मनी का रवैया रखते थे। इसके बावजूद कुछ उलेमा उनके शिष्य बने। महदी शरीयत के कानून के मुताबिक ईश्वर की आराधना करते थे। अल्लाह, उनके पैगम्बर और उनकी पुस्तक उनके लिए प्रमुख दिशा-निर्देशक थे। महदवी दायरों में रहा करते थे जहां वे शरियत के कानून का पालन किया करते थे। महदवियों के लिए कुरान के आदेश दो हिस्सों में विभक्त थे। **शरियत** से जुड़े ऐसे भाग जिनकी व्याख्या पैगम्बर मोहम्मद ने की थी, और अंतिम वली या महदी की व्याख्या। बाद वाले भाग में निम्नलिखित बातें शामिल हैं। संसार का त्याग, सत्य को अपनाना, मनुष्य मात्र से अलगाव, ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण, ईश्वर की खोज, आय के 10वें हिस्से का वितरण, लगातार **जिक्र** (ईश्वर का) करना और प्रवास करना (हिजरत)। जौनपुर के सैयद मोहम्मद की मृत्यु के बाद महदी की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए कई **दायरों** की स्थापना की गई। इन दायरों में रहने वाले गुरुओं को खलीफा कहा जाता था। दीक्षा के लिए स्थानीय बोलियों का प्रयोग करते थे। महदियों के आत्म बलिदान और रहन-सहन के साधारण ढंग के कारण जनता इन दायरों की ओर आकृष्ट हुई। इन दायरों की स्थापना दक्षिण और उत्तर भारत में गुजरात, चंडीगढ़, अहमदनगर, बयाना आदि में हुई।

29.4 18वीं शताब्दी में पुनरुत्थानवादी इस्लामी आंदोलन

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का तेजी के साथ पतन हुआ। मराठा, जाट और सिखों जैसे हिंदू सम्प्रदायों ने मुस्लिम शक्ति को गंभीर चुनौती दी। इस पृष्ठभूमि में धार्मिक राजनीतिक प्रकृति का इस्लामी पुनरूत्थान आंदोलन शुरू हुआ और यह शाह वलीउल्लाह (1703-62) के लेखन के माध्यम से सामने आया। वह मूल रूप से एक धर्म शास्त्री थे जिन्होंने मूल तत्व की रक्षा पर बल दिया और इस्लाम में किसी प्रकार के बदलाव को अस्वीकार कर दिया। शाह अपने आपको मुस्लिम समाज का सुधारक कहते थे। वे पैगम्बरी परम्पराओं को फिर से स्थापित करना चाहते थे। उनके धार्मिक और राजनीतिक

विचारों ने मुजाहिदीन (धर्म यौद्धा) नामक धार्मिक सुधारकों को प्रभावित किया। गदर (1857) के बाद के काल में उनके धार्मिक विचारों से इस्लामी पुनरुत्थान के कई मत प्रभावित हुये : सैयद अहमद खान का आधुनिकवाद और अलीगढ़ आंदोलन, देवबंद संस्था के परम्परागत धर्मशास्त्री और नव-परम्परावादी अहलेह दीस (पैगम्बर मोहम्मद की परम्परा के अनुगामी) इससे प्रभावित हुये।

बोध प्रश्न 4

1) महदवी आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं ?

....

....

....

....

....

2) 18वीं शताब्दी में इस्लामी पुनरूत्थानवादी आंदोलन की प्रकृति पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

29.5 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में भक्ति आंदोलन के विकास का अध्ययन किया। इसके साथ-साथ हमने इसकी विचारधारा, विभिन्न मतों और सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में इसके प्रभाव का भी अध्ययन किया। इस इकाई में इस्लामी रहस्यवाद की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया। सूफी दर्शन की प्रकृति, इसके मुख्य **सिलसिले** और ग्रंथों के साथ-साथ महदवी आंदोलन की प्रकृति पर भी विचार किया गया। अंत में इस इकाई में 18वीं शताब्दी के दौरान इस्लामी पुनरूत्थानवादी आंदोलनों की प्रकृति पर प्रकाश डाला गया।

29.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3
2) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.2
3) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.4
2) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3
3) देखिए भाग 29.2 और उपभाग 29.2.3

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 29.3 और उपभाग 29.3.1
2) देखिए भाग 29.3 और उपभाग 29.3.3

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 29.3 और उपभाग 29.3.4
2) देखिए भाग 29.4